व्यक्तित्व

# कहां अजीत सिंह और कहां हेडगेवार

**1907-47 में अजीत सिंह सरकार से लड़ रहे थे, इसी दौरान हेडगेवार अंग्रेजों के तलवे चाटने वाले संघ का गठन कर रहे थे**

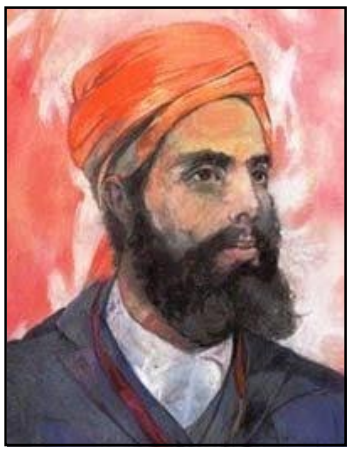

इस समय जब तीन कृषि कानूनों के खिलाफ पूरे देश में आंदोलन फैलता जा रहा है। सम्पूर्ण देश में एकाधिकारी पूंजीपति वर्ग के हितों के लिए लाए गए कृषि कानूनों का विरोध जारी है तब बरबस ही सरदार अजीत सिंह का जिक्र भी सामने आ जाता है। सरदार अजीत सिंह शहीद-ए-आजम भगत सिंह के चाचा थे। सन् 1906 में ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन द्वारा लाए गए किसान विरोधी तीन काले कानूनों के खिलाफ उन्होंने सन् 1907 में किसानों के आन्दोलन की अगुवाई की थी। ये काले कानून थे- दोआब बारी एक्ट, पंजाब लैंड कॉलोनाइजेशन एक्ट और पंजाब लैंड एलियनेशन एक्ट।

इन कानूनों का उद्देश्य किसानों की जमीनें हड़पना था। इस कानून के अनुसार कोई भी किसान अपनी जमीन से पेट नहीं काट सकता था। अपनी जमीन पर घर तक भी नहीं बना सकता था। दूसरा खतरनाक प्रावधान यह था कि किसान अपनी जमीन केवल अपने बड़े बेटे को ही हस्तांतरित कर सकता था। अगर ब ?ा बेटा वयस्क होने से पहले ही मर जाये तो उस जमीन पर ब्रिटिश सरकार कब्जा कर लेगी। अगर किसान के कोई औलाद नहीं होती तो जमीन अंग्रेजी शासन या रियासत के पास चली जाती थी। दोआब बारी कानून के अनुसार अंग्रेजों ने पंजाब में बारी दोआब नहर से सिंचित होने वाली जमीनों का लगान दुगना कर दिया था। इससे पूर्व 1879 में ब्रिटिश सरकार ने चिनाब नदी पर बारी दोआब नहर का निर्माण करने के लिए किसानों से जमीनें ली। इसके बदले दूसरी जगहों पर किसानों को जमीनें दे दी गयी। लेकिन नए कानून के अनुसार किसानों से जमीन का मालिकाना हक सरकार ने ले लिया और किसानों की हैसियत बटाईदार की हो गयी।

सरदार अजीत सिंह ने इन किसान विरोधी काले कानूनों के खिलाफ 1907 में शुरू हुए किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया था। 22 मार्च 1907 को लायलपुर में किसानों की बड़ी सभा में लाला बांके दयाल ने 'पगड़ी संभाल जट्टा' गीत गाया था। सन् 1907 का वर्ष भारत के प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन की 50 वीं सालगिरह का भी वर्ष था। यह आन्दोलन 9 महीने तक चला था और किसानों की एकता और संघर्ष के दबाव में ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा और नवम्बर 1907 को तीनों काले कानूनों को वापस लेना पड़ा था। हालांकि सरदार अजीत सिंह को ब्रिटिश सरकार ने गिरफ्तार कर वर्मा (आज जिसे म्यांमार कहा जाता है) की मांडले जेल भेज दिया। मांडले जेल से रिहा होने के बाद अजीत सिंह ने 'भारत माता सोसायटी' का गठन किया और 'भारत माता बुक एजेंसी' स्थापित की। जिसका कार्य ब्रिटिश सरकार विरोधी साहित्य सामग्री को प्रकाशित करना था। ब्रिटिश सरकार ने इसके द्वारा प्रकाशित साहित्य को जब्त कर लिया लेकिन सरदार अजीत सिंह ब्रिटिश सरकार के चंगुल से बचते हुए क्रांतिकारी साथी सूफी अम्बा प्रसाद के साथ सन् 1909 में कराची होते हुए ईरान चले गए। ईरान से वह पेरिस गए और वहां उन्होंने भारतीय क्रांतिकारी संघ की स्थापना की। इस दौरान वह यूरोप के अलग-अलग देशों में यात्रा करते रहे और बसे हुए भारतीय क्रांतिकारियों से मिलकर देश को आजाद कराने को प्रयत्न करते रहे। इस दौरान वह लेनिन और ट्राटस्की से भी मिले।

**सन् 1914 में पहला विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने पर वह ब्राजील आ गए और यहां हिन्दुस्तानी गदर पार्टी से सम्पर्क स्थापित किया। सरदार अजीत सिंह लगभग 38 साल तक देश से बाहर रहकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष करते रहे। सन् 1947 में वह भारत वापस आए। उनका देश की जनता ने गर्मजोशी से स्वागत किया। वह देश के विभाजन और साम्प्रदायिक दंगों से बहुत दुःखी थे। 15 अगस्त 1947 को जब देश आजादी का जश्न मना रहा था उसी दिन उन्होंने अंतिम सांस ली।**

सरदार अजीत सिंह का जन्म 23 फरवरी 1881 को जालंधर के खटकलां गांव में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक पढ़ाई जालंधर में हुई उसके बाद लाहौर के डीएवी कालेज से पढ़ाई की। कानून की पढ़ाई के लिए बरेली कालेज, बरेली में प्रवेश लिया लेकिन ब्रिटिश उपनिवेशवाद से देश को आजाद कराने के लिए यह क्रांतिकारी विचारों और क्रांतिकारी राजनीति की तरफ मुड़ गए। सरदार अजीत सिंह का सम्पूर्ण जीवन ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध क्रांतिकारी राजनीति और संघर्ष का जीवन रहा है। उन्होंने पंजाब में ब्रिटिश सरकार के किसान विरोधी काले कानूनों के खिलाफ बड़े किसान आन्दोलन को संगठित करने से लेकर देश से बाहर रहकर क्रांतिकारी आन्दोलन को संगठित कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद को पूरे जीवन भर चुनौती दी।

आज जब देश में संघी फासीवादी सत्ता में हैं और एक से बढ़कर एक किसान-मजदूर विरोधी काले कानून देश पर थोप रहे हैं। खेती-किसानी से लेकर मजदूरों के सस्ते श्रम को एकाधिकारी पूंजीपतियों के हवाले करने की साजिशें रची जा रही हैं तो इसका जवाब भी महान क्रांतिकारी सरदार अजीत सिंह के क्रांतिकारी आदर्शों और राजनीति से ही दिया जा सकता है।

**साभार परचम वर्ष-12 अंक-2**

श्रम

# जब मैं यकायक साहब बन गया

**सतीश कुमार**

सुप्रीम कोर्ट ने मेरे हक में बहुत बढ़िया फ़ैसला देने के साथ-साथ हाई कोर्ट को भी कह दिया कि जब उन्हें फुर्सत हो कम्पनी की अपील पर फ़ैसला दे दे। करीब सात साल बाद हाई कोर्ट में इस केस का नम्बर आया। उस कार्रवाई क़ा नजारा दिखाने से पहले मैं इस दौरान के कुछ रोचक अनुभवों को साझा करना चाहूंगा।

इस दौरान विदेशी ट्रेड यूनियनिस्टों से भी मेरे अच्छे सम्बन्ध होने लगे थे तो पासपोर्ट बनवाने की जरूरत महसूस हुई। आवेदन किया गया, उस समय 50 रुपये की फ़ीस होती थी जमा करा दी। करीब एक माह बाद स्थानीय पुलिस वाला तसदीक करने मेरे पास आया और मेरे द्वारा आवेदन फ़ार्म में 'ट्रेडयूनियनिस्ट' को बतौर पेशा लिखने पर एतराज जताते हुए कहा कि यह क्या लिख दिया इससे तो पासपोर्ट कभी भी नहीं बन सकता। मैने भी हल्के-फुल्के अंदाज में पूछा कि और क्या लिख दूं? काफ़ी सोच-विचार कर उसने कहा कि बिजनेस लिख दो, मैने कहा कि वह तो मैं करता नहीं और झूठ मैं लिखता नहीं।'तो फ़िर पासपोर्ट तो बनने वाला है नहीं।' मैंने कहा कि पासपोर्ट तो पिछले सप्ताह ही बन कर मेरे पास आ चुका है, मैंने उसे दिखाया तो उसने अपना सिर पीट लिख।

उस वक्त मेरे पासपोर्ट पर अंग्रेजी में एक मुहर लगी थी, 'इमिग्रेशन चेक रिक्वायर्ड।' इसे हटवा कर यानी इसकी जगह 'इमिग्रेशन चेक नॉट रिक्वायर्ड' की मुहर लगवानी थी। इसके लिये मुझे शास्त्री भवन दिल्ली जाना पड़ा। दरअसल भारत सरकार की ओर से यह व्यवस्था इस लिये की गयी थी ताकि नौकरी ढूंढने के लिये लोग विस्थापन न कर सकें क्योंकि ऐसा करने पर विदेशों में भारतीय श्रमिकों की काफ़ी दुर्दशा हुआ करती थी जो आज भी हो रही है। खैर, मैं जो शास्त्री भवन के सम्बन्धित कार्यालय पहुंचा तो वहां दरवाजे के बाहर, इसी काम के लिये आये 20-30 लोगों की लाइन लगी खड़ी थी, जो मुझे बाद में पता चला और दरबाजे पर एक चपरासी कुर्सी लगा कर एक पांव से दरवाजा रोके बैठा था।

मैं अनजाने में ही सीधा दरवाजे तक पहुंच गया। वहां पूरी मस्ती में बैठे चपरासी ने भन्ना कर पूछा कहां चले जा रहे हो? मैंने अपना काम बताया तो वह और भी तपक कर बोला, इन्कम टैक्स दिया है कभी? मैंने हां कहते हुए उसे 10556/- रु. के इनकम टैक्स भुगतान का सरकारी प्रमाणपत्र दिखा दिया जिस के लिये मे तेयार होकर गया था। इस बाबत मुझे मेरे एक समझदार साथी ने पहले ही सचेत कर दिया था। काग़ज का वह टुकड़ा देखते ही चपरासी का तो रंग ही बदल गया। कुर्सी से एकदम ऐसे उठा जैसे करंट लग गया हो; उठ कर 'सलाम साहब' बोला। अब, उस एक काग़ज की बदौलत मज़दूर से साहब हो गया था। चपरासी बड़ी फुर्ती से मुझे बाअदब सम्बन्धित अधिकारी के पास ले गया और उनके सामने वाली कुर्सी पर बैठाते हुए अधिकारी से कहा कि साहब आयकरदाता हैं।

अधिकारी कभी मुझे देखे कभी

सोनीपत में शोषण कर रहे फैक्ट्री मालिकों के खिलाफ लड़ाई लड़ने वाले शिव कुमार को गुरूवार को जमानत मिल गई

आयकर प्रमाणपत्र को। हालांकि मैं खूब नहा-धो-कर अपने बेहतरीन कपड़े पहन कर गया था लेकिन इसके बावजूद भी मैं कहीं से इतना बड़ा रईस नहीं लग पा रहा था जो इतनी बड़ी रकम बतौर आयकर देता हो। दरअसल उस जमाने में 6000 रुपये वार्षिक तक कमाने वालों को आयकर से छूट होती थी और उस अधिकारी के मासिक वेतन से भी दुगना तो मैं टैक्स दिये बैठा था। लिहाजा उसकी भी हिम्मत ज़्यादा पूछताछ करने की नहीं हुई और तुरंत मेरा काम निपटा दिया।

असल में मुझ पर यह आयकर बीते करीब 6 साल का वेतन एक मुश्त लेने पर लगा था जो मैंने आयकर वकील की मार्फ़त पिछली 6 रिटर्नें भर कर सारा टैक्स वापस (रिफंड) ले लिया था। बेशक मेरा कुछ पैसा कुछ समय के लिये आयकर विभाग के पास रहा और मुझे उस जमाने में एक बड़े आयकर दाता का रूतबा तो दिला ही गया, जिससे मुझ जैसे उस मज़दूर का जो 1975 में 10 रु. दिहाड़ी पर गुडईयर में रबड़ ढोने पर लगा हो, यकायक 'साहब' बना दिया। लेकिन मैं अपनी औकात एवं हकीकत को बखूबी समझता था। हां इस प्रसंग से मुझे यह तो अच्छी तरह समझ में आ गया कि हमारे समाज में एक धनवान व्यक्ति को कितना अधिक मान-सम्मान दिया जाता है; यह जानने का प्रयास कोई नहीं करता कि वह धनवान बना तो बना कैसे, उसने क्या-क्या हथकंडे अपनाये, क्या-क्या काले-पीले धंधे किये।

इसी प्रसंग से पुलिस की यह मानसिकता भी स्पष्ट होती है कि ट्रेडयूनियनिस्ट एक गुनहगार होता है और ट्रेड यूनियन करना ही अपने आप में अपराध है। यह मानसिकता उस वक्त भी थी और आज तक भी कायम है। उस वक्त भी पुलिस ट्रेड यूनियनिस्टों के साथ बड़े अपराधियों जैसा व्यवहार एवं टार्चर करती थी और आज भी। दूर जाने की जरूरत नहीं, हाल ही में सोनीपत पुलिस ने नौदीप कौर व शिव कुमार के साथ जो बर्बरता की है, वह इस हकीकत का जीता-जागता सबूत है। ये लोग ट्रेड यूनियन का ही तो काम कर रहे थे। मज़दूरों के हितों की ही तो बात कर रहे थे

ये लोग कोई शस्त्र संघर्ष नहीं कर रहे थे, केवल धरने, जुलूस, नारेबाज़ी के द्वारा ही संघर्ष करके अपनी आवाज़ को बुलंद कर रहे थे। इसके बावजूद इन लोगों पर हत्या व हत्या के प्रयास जैसी गंभीर आपराधिक धारायें लगा कर गिरफ़्तार कर लिया गया। सब कुछ जानते-समझते हुए भी अदालतों ने अंधी-बहरी कठपुतलियों की भूमिका निभाते हुए, इन्हें पुलिस के शिकंजे से छुड़ाने की बजाय रिमांड पर रिमांड देती रही और उसके बाद न्यायिक हिरासत में जेल भेज कर अपने 'पावन कर्त्तव्य' की इतिश्री कर डाली।

नियमानुसार गिरफ़्तारी के समय पुलिस को आरोपित की डॉक्टरी करानी चाहिये तथा अदालत को भी पेशी के वक्त उसकी हालत को देखते हुए भी डॉक्टरी करानी चाहिये। लेकिन इस मामले में या तो डॉक्टरी कराई ही नहीं गयी अथवा डॉक्टरों ने भी व्यवस्था का हिस्सा बनते हुए फ़र्जीवाड़ा किया। हाई कोर्ट ने सब कुछ देखा, यहां तक कि पुलिस फ़ाइल में इनके विरुद्ध कुछ भी नहीं ढूंढ पाई। अपने आदेश से दोनों की डॉक्टरी चंडीगढ के मेडिकल कॉलेज में करा कर सच्चाई को जाना और उनके साथ हुए भयंकर टॉर्चर की वह जानकारी सामने आई जिसे कि पुलिस व डॉक्टरों ने छिपाने का प्रयास किया था। लेकिन इसके बावजूद न तो किसी डॉक्टर, पुलिस व निचली अदालत के विरुद्ध कोई कार्यवाही की। और तो और उन्हें जमानत देने भर के लिये हफ़्तों नौटंकी करती रही।

यह सब इस लुटेरी पूंजीवादी व्यवस्था का खेल है। पुलिस एवं अदालतें इस व्यवस्था के अहम किरदार हैं। इस व्यवस्था को चलाने वाले हाकिमों के चेहरे बदलते रहते हैं, जनता को धोखा देने के लिये भेस बदल-बदल कर आते रहते हैं, और अपनी लुटेरी व्यवस्था को कायम रखते हैं।

**(सम्पादक : मजदूर मोर्चा)**